ISSN: 2456-9186, Vol. II, Issue. I, June-2018

वागर्थः

(An International Journal of Sanskrit Research)

Journal Homepage: http://cphfs.in/research.php

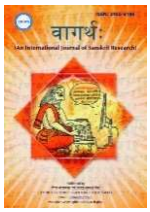

वैदिक वाङ्मय में मानवाधिकार की अवधारणाएँ

डॉ. धनंजय कुमार मिश्र

अध्यक्ष संस्कृत विभाग

संताल परगना महाविद्यालय,

सिदो-कान्हू मुर्मू विश्वविद्यालय, दुमका (झारखण्ड) 814101

dkmishraspcd@gmail.com

शोध-सार: यद्यपि संयुक्त राष्ट्र संघ ने 10 दिसम्बर 1948 ई0 को मानव अधिकार की सार्वभौम घोषणा को अंगीकार कर संघ के राष्ट्रों को मार्गदर्शन और प्रेरणा प्रदान की तथापि इसके बीज तो हजारों वर्ष पूर्व पवित्र भारत भूमि के ग्रन्थ-रत्नों में दिखाई देते हैं। मानवाधिकार से सम्बन्धित घोषणा पत्र की अधिकांश बातें संस्कृत साहित्य में प्राचीन काल से ही प्राप्त होती है। प्रस्तुत पत्र में हमारा ध्येय उन्हें पुनः पाठकों, बुद्धिजीवियों और शोधप्रज्ञों के समक्ष प्रस्तुत कर संस्कृत की समृद्धि को दिखाना तथा शोध की नई राह उद्घाटित करना है ।

मूल शब्द: मानवाधिकार, सार्वभौम घोषणा, जीवन का अधिकार, स्वतन्त्रता का अधिकार, अभिव्यक्ति की आजादी का अधिकार, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक समानता के अधिकार, समानता सम्पत्ति का अधिकार, संज्ञान सूक्त ।

I. प्रस्तावना

मानव जाति सृष्टि का उत्कृष्टतम उपहार है। यह मान्यता है कि 84 लाख योनियों में मानव योनि अपने बुद्धि, विवेक और ज्ञान के बल पर अन्य योनियों से न केवल श्रेष्ठ है अपितु सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को वह अपने ज्ञान से मुट्ठी में कर लेना चाहता है, जीत लेना चाहता है। प्रगति के इस दौड़ में मानव समाज को कई विसंगतियों का सामना करना पड़ रहा है और इसके निवारण के लिए मानवीय संस्थायें नित नए प्रारूप तैयार कर उसे अमल में लाने का प्रयास कर रही है। "इन्सान का इन्सान से हो भाई चारा'' - कुछ यही पैगाम मानवाधिकार को जन्म देता है।

मानवाधिकार शब्द मूलतः दो शब्दों से बना है - मानव और अधिकार। विशिष्ट अर्थ में मानवाधिकार उन अर्थों को व्याख्यायित करता है जिससे मानव जाति अपने मूल-भूत अधिकारों एवं स्वतन्त्रता का हकदार है। अधिकार के अन्तर्गत न केवल राजनीतिक नागरिक अधिकार का समावेश होता है वरन् जीवन का अधिकार, स्वतन्त्रता का अधिकार, अभिव्यक्ति की आजादी का अधिकार, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक समानता के अधिकार आदि का भी समावेश होता है। साथ ही साथ प्रत्येक मानव का इच्छानुसार सांस्कृतिक गतिविधियों में भाग लेने का अधिकार, काम करने का अधिकार, भोजन का अधिकार, शिक्षा का अधिकार आदि अनेक अधिकारों का समावेश मानवाधिकार के अन्तर्गत किया जाता है,

जिसका मानव जाति आग्रही है। ऐसे कुछ मानवाधिकार हैं जो कभी छीने नहीं जा सकते क्योंकि मानव की अपनी एक गरिमा है और इस कड़ी में स्त्री-पुरुष के समान अधिकार हैं।

II. स्वतन्त्रता और समानता

मानवाधिकार के सार्वभौम घोषणा के प्रथम अनुच्छेद के अनुसार मानव को जन्मजात स्वतन्त्रता और समानता प्राप्त है। मानव जाति को परस्पर भाईचारे के भाव से वर्ताव करना चाहिए। अनुच्छेद एक की इस बात को ऋग्वेद के दशम मण्डल के संज्ञान सूक्त में बड़े ही मार्मिक और सटीक ढंग से भारतवर्ष के ऋषियों ने प्रस्तुत किया है। यथा -

'समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।' [1]

अर्थात् समस्त प्रजाजनों के विचार एक जैसे हों। शासन में प्रजा का प्रतिनिधित्व करने वाली समिति एक हो। इनके मन एक जैसे हों। इसी सूक्त में आगे मानवाधिकार का बीज रूप विचार द्रष्ट्व्य है -

"समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।" [2]

हम मानवों के संकल्प या निश्चय समान हों, हृदय एवं मन समान हो जिससे परस्पर सुसंगठित होकर मानव समाज अच्छी तरह रह सके। इतना ही नही समानता के अधिकार का यह रूप ऋग्वेद में ही देखिये -

"सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।" [3]

हे मानव! तुम सब मिलकर चलो। मिलकर प्रेम से परस्पर बोलो। तुम्हारे मन समान ज्ञान वाले हों। संयुक्त राष्ट्रसंघ के सार्वभौम घोषणा के द्वितीय अनुच्छेद में भी तो यही बातें कही गयी हैं।

III. शारीरिक यातना, निर्दयता, अमानुषिक या अपमानजनक व्यवहार का निषेध

संयुक्त राष्ट्र संघ ने स्पष्ट कहा है कि जाति, वर्ण, लिंग, भाषा, धर्म, राजनीतिक या अन्य विचार प्रणाली जन्म, सम्पत्ति या अन्य मर्यादा के कारण मानव-मानव में भेद-भाव का विचार न किया जायेगा। सार्वभौम घोषणा में वर्णित कुल तीस अनुच्छेद हैं। इन अनुच्छेदों में अनुच्छेद तृतीय में व्यक्ति के जीवन, स्वाधीनता और वैयक्तिक सुरक्षा का अधिकार वर्णित है। अनुच्छेद पंचम में शारीरिक यातना, निर्दयता, अमानुषिक या अपमानजनक व्यवहार के निषेध का वर्णन है। इन तथ्यों का मूल भी संस्कृत साहित्य में प्राप्त होता है। बोधायनधर्मसूत्र में इस बात का मूल अहिंसा पर बल देते हुए कहा गया है -

"अहिंसया च भूतात्मा मनः सत्येन शुध्यति।" [4]

अर्थात् मानव जाति की आत्मा अहिंसा से तथा मन सत्य से शुद्ध होता है। यहाँ सत्यनिष्ठा के साथ मानव मात्र के प्रति सद्व्यवहार का वर्णन है और मानवाधिकार का यह मूल है। इतना ही नहीं मानवाधिकार का यह मूल मंत्र ईशावास्योपनिषद् में कितने सूक्ष्म रूप से वर्णित है। देखा जाय -

"यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति। सर्वभूतेषु चात्मानम् ततो न विजुगुप्सते।।"[5]

जो व्यक्ति समस्त मानव जाति को अपने में ही देखता है और समस्त मानवों में अपने आपको देखता है वह मानव मात्र से घृणा नहीं करता है। कितना उदात्त नैतिक उपदेश है मानवाधिकार की रक्षा के लिए। वाजसनेयी संहिता में और स्पष्ट रूप से इस बात को कहा गया है - "मा हिंसीः पुरूषं जगत्" [6] - हे मानव ! तुम संसार में हिंसा मत करो।

IV. स्त्री-पुरुष समानता

संस्कृत साहित्य स्त्री-पुरुष समानता का पोषक है। यद्यपि भारतवर्ष का समाज पितृसत्तात्मक है तथा सदियों से रहा है परन्तु मानव-स्त्री (नारी) के प्रति सदैव सद्व्यवहार और उच्च मर्यादा का पालन करने का आदेश और उपदेश संस्कृत वाङ्मय में वर्णित है। निश्चित रूप से यह मानवाधिकार को पुष्ट करने वाला है। आपस्तम्ब श्रौतसूत्र में स्पष्टतः वर्णित है कि पति और पत्नी दोनों समान रूप से धन के स्वामी हैं। नारियों के प्रति अन्याय न हों, वे शोक न करें और न वे उदास होने पाये मनुस्मृति (3/57) भी यही कहती है।

"शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्। न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा।।"[7]

V. विश्व-बन्धुत्व की भावना

मानवाधिकार की सार्वभौम घोषणा में विश्व-बन्धुत्व की भावना परोक्ष रूप से स्वीकृत है। बन्धुत्व की भावना सदैव मानव जाति के लिए हितकर है। संस्कृत साहित्य के प्राचीन ग्रन्थों में विश्व-बन्धुत्व की भावना का उपदेश प्रायः दृष्टिगोचर होता है। वेदों में तो

यह भावना अतिशय है। संकीर्ण भावना या प्रतिस्पर्धात्मक वैमनस्य की भावना से ऊपर उठकर विश्वबन्धुत्व की भावना का जैसा चित्र वेदों में मिलता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। विश्वबन्धुत्व की यह भावना मानवाधिकार की रक्षा के लिए मेरूदण्ड के समान है। उदाहरण के तौर पर यजुर्वेद का यह उपदेश द्रष्ट्व्य है जिसमें कहा गया है कि - 'मैं प्राणिमात्र को मैत्रीपूर्ण दृष्टि से देखूँ तथा समस्त जीव भी मुझे मैत्रीपूर्ण निर्भय दृष्टि से देखें। इस प्रकार हम एक दूसरे के लिए मित्रवत् रहें।'

"मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।।" [8]

VI. बिना भेद-भाव के सबकी समानता

संयुक्त राष्ट्रसंघ के सार्वभौम घोषणा का अनुच्छेद सात बिना भेद-भाव के सबकी समानता की बात कहता है। वेदों में भी सबके समानता की बात कही गई है। यहाँ यह स्पष्टकर देना उचित है कि वेदों में वर्णित वर्ण-व्यवस्था के अन्तर्गत कहे गए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को प्रायः सामान्य जन समझने में भूल कर जाते हैं और विशेष रूप से शूद्र के प्रति अन्याय का कारण कह देते हैं। वेदों में शूद्रों को समानता का अधिकार दिया गया है। उन्हें कहीं भी हीन या निकृष्ट नहीं माना गया है। उन्हें वेद पढ़ने का पूर्ण अधिकार दिया गया है। यथेमां वाचं कल्याणीमा वदानिजनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च। [9] उनको राजकृत अर्थात् राजा के निर्वाचकों में स्थान दिया गया है। इनमें रथकार अर्थात् बढ़ई, कर्मार अर्थात् शिल्पी, सूत अर्थात् सारथि शूद्र वर्ग से हैं। ये धीवानो रथकाराः कर्मारा ये मनीषिणः। ये राजानो राजकृतः सूता ग्रामण्यश्च ये।। [10] इसी प्रकार राज्य-संचालकों में भी बढ़ई, शिल्पी और सूत को स्थान दिया गया है। ये सभी शूद्र वर्ण के हैं। अराजानो राजकृतः सूतग्रामण्यः।[11]

VII. व्यक्ति सम्मान और ख्याति

व्यक्ति सम्मान और ख्याति का अधिकारी है यह अनुच्छेद बारह कहता है। इस भावना को हमारे आर्ष ग्रन्थों में अत्यन्त सुन्दरता से रखा गया है। यथा मनुस्मृति (4/139) का स्पष्ट कथन है - " भद्रं भद्रमिति ब्रूयाद् भद्रमित्येव वा वदेत्। शुष्कवैरं विवादं च न कुर्यात्केनचित्सह।।"[12] अनुच्छेद तेरह अखिल विश्व में निवास करने की स्वतंत्रता का पोषक है जबकि अनुच्छेद 15 प्रत्येक व्यक्ति को किसी भी राष्ट्र-विशेष की नागरिकता पाने का अधिकारी बनाता है। वैदिक वाङ्मय भी इन भावनाओं को बीज रूप में अपने अन्दर समाहित किए हुए है। परवर्ती ग्रन्थों में यह स्पष्ट दिखाई देता है - सर्वं जिह्मं मृत्युपदमार्जवं ब्रह्मणः पदम्। (महाभारत 12/79/21) अर्थात् समस्त कुटिल व्यवहार मृत्यु का स्थान है और समस्त सरल व्यवहार ब्रह्म अर्थात् अमरत्व का। आत्मौपम्येन मन्तव्यं बुद्धिमद्भिः कृतात्मभिः। [13] अर्थात् सम्पूर्ण प्राणियों को अपने समान समझना चाहिए।

VIII. विवाह और परिवार स्थापन

अनुच्छेद 16 वयस्क स्त्री-पुरूषों को बिना किसी जाति, राष्ट्रीयता या धर्म के आपस में विवाह करने और परिवार स्थापन करने का अधिकार देता है। साथ ही स्त्री-पुरूषों की पूर्ण और स्वतन्त्र सहमति पर ही विवाह का आग्रही है। वैदिक वाङ्मय में इस पर व्यापक प्रकाश डाला गया है। अथर्ववेद स्पष्ट निर्देश करता है कि पत्नी और पति में शान्ति और प्रेम तथा आपसी सहमति बनी रहे - "जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम्।"[14] इसी भावना को परवर्ती स्मृतिग्रन्थों में भी सम्यक् रूप से कहा गया है - "सन्तुष्टो भार्यया भर्ता भत्र्ा भार्या तथैव च। यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्।।" (मनुस्मृति 3/60)

IX. सम्पत्ति का अधिकार

अनुच्छेद 17 सम्पत्ति के अधिकार का हिमायती है। इस भावना को वैदिक साहित्य में अत्यन्त ही मार्मिक तरीके से रखा गया है। यथा - "विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु।"[15] अर्थात् हमारा विश्व सुसम्पन्न और सुमति युक्त हो। इस संसार में कोई भूखा प्यासा न रहे - "मा क्षुधन्मा तृषत्।" [16] "शतहस्त ! समाहर सहस्रहस्त सं किर।' ' [17] मानव सौ हाथों कमाये हजार हाथों से बाँटे। इतना ही नहीं वैदिक वाङ्मय परिवार से विश्व तक शान्ति और भाईचारे की बात करते हुए उनके अधिकारों का रक्षक दिखता है। भारतीय ऋषि कहता है - भाई भाई से द्वेष न करे,न बहन बहन से। "मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।।" [18] अनुच्छेद 18 व्यक्ति को विचार, अन्तरात्मा और धर्म की आजादी का अधिकार प्रदान करता है। साथ-साथ अपने विश्वास को शिक्षा, क्रिया, उपासना तथा व्यवहार के द्वारा प्रकट करने की स्वतन्त्रता का पक्षधर है। वैदिक

वाङ्मय में इस भावना को सारगर्भित ढंग से रखा गया है। यथा - इषं स्वश्च धीमहि। [19] अर्थात् हम सुख और स्वतन्त्रता का चिन्तन करें। जुष्टाः भवन्तु जुष्टयः [20] आपसी प्रीतियाँ प्रीति युक्त हो। विश्वेन्नरः स्वपत्यानि चक्रुः। [21] प्रजा अपनी संतान को सुसन्तान बनाएँ।

X. शासन में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से हिस्सा लेने का आग्रही

अनुच्छेद 20 सभा करने और समिति बनाने की स्वतन्त्रता की बात कहता है तथा शासन में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से हिस्सा लेने का आग्रही है। इस भावना का भी संकेत वैदिक वाङ्मय में स्पष्ट परिलक्षित होता है। वेद कहता है "सिंहा इव नानदति प्रचेतसः" [22] (ज्ञानवान् शेरों की तरह गरजते हैं), मेधा अदृप्तः [23] (मेधावी अनहंकारी अर्थात् विनम्र होते है), मो अहं द्विषते रधम् [24] (मैं द्वेषी के प्रति अहित न करूँ) रसेन समगस्महि [25] (हम परस्पर प्रेम पूर्वक मिलें।) अस्माकं शंसो अभ्यस्तु दूढ्यः [26] (संसार में न्याय-शासन हो।)

XI. सामाजिक सुरक्षा

अनुच्छेद 22 प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक सुरक्षा का अधिकार देता है। अनुच्छेद 23 काम करने, रोजगार के चयन करने और उचित और सुविधाजनक परिस्थियों को प्राप्त करने का हक देता है। वैदिक वाङ्मय इसी बात को अपने वर्णाश्रम धर्म के द्वारा प्रस्तुत करता है। वैदिक वर्णव्यवस्था कर्मणा है। यह मानव के गुण और कर्म पर आश्रित है। इसका आधार सदैव पेशा या वृत्ति से है न कि जन्म से। वैदिक वाङ्मय स्पष्ट कहता है कि कोई भी व्यक्ति अपने कर्मों के आधार पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र है। ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरूद्भ्यो वैश्यं तपसे शूद्रम्।। [27] ज्ञान, शिक्षा और बौद्धिक कार्य करने वाले को वैदिक वाङ्मय में ब्राह्मण कहा गया है। श्रम, तपस्या, ज्ञान, श्री, यश, श्रद्धा, दीक्षा और यज्ञनिष्ठा को ब्राह्मण का गुण कर्म कहा गया है। श्रमेण तपसा सृष्टा ब्रह्मणा वित्तर्ते श्रिता। सत्येनावृता श्रिया प्रावृता यशसा परीवृता। [28] श्रद्धया पर्यूढा दीक्षया गुप्ता यज्ञे प्रतिष्ठिता।। [29] इसी प्रकार राष्ट्र और देश की सुरक्षा क्षत्रिय का कर्म है। आवश्यकता पड़ने पर ब्राह्मणों को भी धनुष रखने शस्त्रास्त्र चलाने और शत्रुओं को नष्ट करने का अधिकार प्राप्त है। तीक्ष्णेषवो ब्राह्मणा हेतिमन्तो यामस्यन्ति शरव्यां न सा मृषा। [30] देश-देशान्तर से व्यापार तथा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को सँभालना वैश्य का कर्म है। रूचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रूचं राजसु नस्कृधि। रूचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रूचा रूचम्।। [31] श्रम साध्य समस्त कार्य, शिल्प आदि से सम्बन्धित समस्त कार्यकरने वाले शूद्र हैं। प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु। प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये।। [32] वैदिक वाङ्मय यह स्पष्ट बताता है कि चारों वर्णो में परस्पर सामंजस्य, प्रेम और सद्भाव के लिए ऊँच-नीच, स्पृश्य-अस्पृश्य का कोई स्थान समाज में नहीं। चारों वर्णों को समान रूप से वेदाध्ययन का अधिकार वैदिक ऋषियों ने दिया है। यथेमां वाचं कल्याणीमा वदानिजनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च।। [33] शरीर के चार भाग ही चार वर्ण के द्योतक हैं। जिस प्रकार किसी भी अंग की कमी या अवहेलना मानव के अस्तित्व के लिए ही प्रश्न बन सकता है उसी प्रकार किसी वर्ण की कमी समाजिक अस्तित्व के लिए विकट समस्या हो सकती है। तभी तो वर्ण के लिए ऋग्वेद में इस रूपक का प्रयोग किया गया है। ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः। उरू तदस्य यद् वैश्यः शूद्रो अजायत। [34]

XII. विश्राम और अवकाश का अधिकार

अनुच्छेद 24 प्रत्येक व्यक्ति को विश्राम और अवकाश का अधिकार प्रदान करता है। परिवार के स्वास्थ्य एवं कल्याण का अधिकार अनुच्छेद 25 में वर्णित है। साथ ही यही अनुच्छेद जच्चा-बच्चा को खास सहायता और सुविधा का हिमायती है। वेदों में इन भावनाओं का भली - भाँति वर्णन किया गया है। वेद पति के कर्तव्यों का विशेष रूप से उल्लेख करता है। पत्नी के भरण-पोषण का पूर्ण उत्तरदायित्व निभाना, परिवार की उन्नति की व्यवस्था करना, सन्तान की सुशिक्षा का प्रबन्ध करना, संयमी जीवन बिताना गृहस्थ का धर्म कहा गया है। ऋग्वेद कहता है जायेदस्तम् [35] अर्थात् जाया = पत्नी, इत् =ही, अस्तम् = घर है। इसे ही परवर्ती शास्त्रों में इस प्रकार कहा गया है - " न गृहं गृहम् इत्याहुः, गृहिणी गृहमुच्यते। " वैदिक वाङ्मय ने पत्नी को स्वामिनी, गृहस्वामिनी, गृहलक्ष्मी, साम्राज्ञी आदि कह कर सम्बोधित किया है। स्पष्ट है कि वैदिक समाज मानवाधिकार और नारियों के प्रति कितना उदार दृष्टि रखता है।

XIII. शिक्षा का अधिकार

अनुच्छेद 26 कहता है कि प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा का अधिकार है तथा शिक्षा का उद्देश्य मानव व्यक्तित्व का पूर्ण विकास

और मानव अधिकारों तथा प्राथमिक स्वतन्त्रताओं की प्रति सम्मान की पुष्टि करने वाला हो। शिक्षा के द्वारा सद्भावना, सहिष्णुता और मैत्री का विकास तथा शान्ति का प्रयत्न बताया गया है। यही अनुच्छेद माता-पिता को यह अधिकार देता है कि वह अपनी संतान को इच्छानुसार शिक्षा प्रदान करने के लिए स्वतन्त्र है। अनुच्छेद 28 प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक और वैश्विक मान्य अधिकारों को प्राप्त करने का पोषक है। वहीं अनुच्छेद 29 व्यक्ति के कत्तव्यों को दर्शाता है। अन्तिम अनुच्छेद मानव मात्र को किसी भी प्रकार के विनाश से उसे रोकता है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के सार्वभौम घोषणा की उपर्युक्त बातों का सार वैदिक वाङ्मय में अर्थगाम्भीर्य से युक्त कथनों द्वारा भारतीय मनीषियों ने व्यक्त किया है। यथा - अद्या मुरीय यदि यातुधानो अस्मि। [36] अर्थात् यदि मैं दुःखदायी हूँ तो आजही मर जाऊँ। घृतं म चक्षुरमृतं म आसन्। [37] अर्थात् स्नेह मेरी आँख में अमृत मेरे मुख में आदि। वेद स्पष्ट आदेश देता है कि "समानं हृदयं कृधि।" [38] अर्थात् मानव मात्र तुम अपने हृदय को सबके प्रति समान करो। "यानि अनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि।"[39] अर्थात् जो अनिंदनीय कर्म हैं उन्हीं कर्मों को करना चाहिए उससे इतर कर्म नहीं। इतना ही नहीं भारतीय मनीषियों का उद्गार तो इतना है - " प्राणा यथातमनोऽभीष्टा भूतानामपि ते तथा। आत्मौपम्येन भूतानां दयां कुर्वन्ति साधवः।।"

निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि यद्यपि मानवाधिकार कानून और मानवाधिकार की अधिकांश अपेक्षाकृत व्यवस्थाएँ समसामयिक इतिहास से सम्बन्धित हैं तथापि इसके बीज संस्कृत वाङ्मय में यत्र-तत्र-सर्वत्र बिखरे पड़े हैं। भारतीय जनमानस इन तत्वों को भली-भाँति समझता है और अपने जीवन में प्रयोग करना चाहता है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जहाँ मानवाधिकार का परिदृश्य विसंगतियों और विद्रुपताओं से भरा पड़ा है वहीं भारतवर्ष के नागरिक सदियों से मानवाधिकार के उल्लंघन को हेय तथा निकृष्ट मानते हुए सर्वे भवन्तु सुखिनः, वसुधैव कुटुम्बकम्, यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः, कृण्वन्तो विश्वमार्यम् आदि का जयघोष करते हुए मानव-अधिकारों के निर्वहण एवं पालन तथा संरक्षण के पक्षधर हैं।

सन्दर्भ

[1]. द्विवेदी कपिलदेव, वैदिक साहित्य एवं संस्कृति, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पंचम संस्करण 2010 ई0 पृष्ठ 55 (ऋग्वेद 10/191/03)

[2]. कुमार डा. कृष्ण, वेदिक साहित्य का इतिहास, साहित्य भण्डार मेरठ, चतुर्थ संस्करण 1984, पृष्ठ 132 (ऋग्वेद 10/191/04)

[3]. शास्त्री मंगलदेव, सुभाषित सपतशती, वैदिक धारा का अमृत-स्रोत, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, संस्करण 2009, पृष्ठ 32 (ऋग्वेद 10/191/02)

[4]. ऋतिका (द्वितीयः भागः) पाठ्यपुस्तकम्, के. मा.शि.सं. द्वारा प्रकाशित, प्रथमे पाठे पद्य 2

[5]. ईशादि नौ उपनिषद्, ईशावास्योपनिषद्, मंत्र-6, गीता-प्रेस, गोरखपुर, संवत् 2010, पृष्ठ 06

[6]. व्यास डा. रेखा, यजुर्वेद, संस्कृत साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण तीसरा 2010, पृष्ठ 197 (वाजसनेयी संहिता 16/3)

[7]. नेने गोपालशास्त्री (सम्पादक), मनुस्मृतिः, चैखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, सप्तम संस्करण 2003, पृ0 114 (मनुस्मृति 3/57)

[8]. व्यास डा. रेखा, यजुर्वेद, संस्कृत साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण तीसरा 2010, पृष्ठ 406 (यजु0 36/18)

[9]. व्यास डा. रेखा, यजुर्वेद, संस्कृत साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण तीसरा 2010, पृष्ठ 326(यजु0 26/2)

[10]. शर्मा डा. गंगा सहाय, अथर्ववेद, संस्कृत साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण तीसरा, पृष्ठ 114(अथर्ववेद 3/5/6-7)

[11]. द्विवेदी कपिलदेव, वैदिक साहित्य एवं संस्कृति, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पंचम संस्करण 2010 ई0 पृष्ठ 257 (शतपथ ब्राह्मण 3/4/1/7)

[12]. नेने गोपालशास्त्री (सम्पादक), मनुस्मृतिः, चैखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, सप्तम संस्करण 2003, पृ0 207

[13]. महाभारत खण्ड 6 गीता प्रेस गोरखपुर, तेरहवाँ पुनर्मुद्रण, पृष्ठ 493 (महाभारत 13/115/20)

[14]. शर्मा डा. गंगा सहाय, अथर्ववेद, संस्कृत साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण तीसरा, पृष्ठ 147 (अथर्ववेद 3/30/2)

[15]. शर्मा डा. गंगा सहाय, अथर्ववेद, संस्कृत साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण तीसरा, पृष्ठ 69 (अथर्ववेद 1/31/4)

[16]. शर्मा डा. गंगा सहाय, अथर्ववेद, संस्कृत साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण तीसरा, पृष्ठ 100 (अथर्ववेद 2/29/4)

[17]. शर्मा डा. गंगा सहाय, अथर्ववेद, संस्कृत साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण तीसरा, पृष्ठ 140 (अथर्ववेद 3/24/15)

[18]. शर्मा डा. गंगा सहाय, अथर्ववेद, संस्कृत साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण तीसरा, पृष्ठ 147 (अथर्ववेद 3/30/3)

[19]. शर्मा प्रद्युम्न (सं.) स्वामी विद्यानन्द 'विदेह, वेदों की सूक्तियाँ, वेद संस्थान, अजमेर, संस्करण 1977, पृष्ठ 35 (ऋग्वेद 7/66/9)

[20]. ऋषि प्रो. उमाशंकर शर्मा (सं.), ऋग्वेद-संहिता सानुवादभूमिकाविवेचनसायणस्कन्दभाष्यांशपरिशिष्टादि विभूषिता, चैखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, पंचम संस्करण 1998, पृष्ठ 121 (ऋग्वेद 1/10/12)

[21]. शर्मा प्रद्युम्न (सं.) स्वामी विद्यानन्द 'विदेह, वेदों की सूक्तियाँ, वेद संस्थान, अजमेर, संस्करण 1977, पृष्ठ 35 (ऋग्वेद 7/91/3)

[22]. मैक्समूलर सम्पादित ऋग्वेद-संहिता श्रीमत्सायणाचार्यविरचित-माधवीयवेदार्थप्रकाशसहिता (प्रथमं मण्डलम्), चैखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, संस्कारण 1966, पृष्ठ 317 (ऋग्वेद 1/64/8)

[23]. मैक्समूलर सम्पादित ऋग्वेद-संहिता श्रीमत्सायणाचार्यविरचित-माधवीयवेदार्थप्रकाशसहिता (प्रथमं मण्डलम्), चैखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, संस्कारण 1966, पृष्ठ 330 (ऋग्वेद 1/69/3)

[24]. मैक्समूलर सम्पादित ऋग्वेद-संहिता श्रीमत्सायणाचार्यविरचित-माधवीयवेदार्थप्रकाशसहिता (प्रथमं मण्डलम्), चैखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, संस्कारण 1966, पृष्ठ 252 (ऋग्वेद 1/50/13)

[25]. मैक्समूलर सम्पादित ऋग्वेद-संहिता श्रीमत्सायणाचार्यविरचित-माधवीयवेदार्थप्रकाशसहिता (प्रथमं मण्डलम्), चैखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, संस्कारण 1966, पृष्ठ 128 (ऋग्वेद 1/23/23)

[26]. मैक्समूलर सम्पादित ऋग्वेद-संहिता श्रीमत्सायणाचार्यविरचित-माधवीयवेदार्थप्रकाशसहिता (प्रथमं मण्डलम्), चैखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, संस्कारण 1966, पृष्ठ 423 (ऋग्वेद 1/94/8)

[27]. व्यास डा. रेखा, यजुर्वेद, संस्कृत साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण तीसरा 2010, पृष्ठ 360 (यजुर्वेद 30/5)

[28]. शर्मा डा. गंगा सहाय, अथर्ववेद, संस्कृत साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण तीसरा, पृष्ठ 643 (अथर्ववेद 12/5/1)

[29]. शर्मा डा. गंगा सहाय, अथर्ववेद, संस्कृत साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण तीसरा, पृष्ठ 644 (अथर्ववेद 12/5/2-3)

[30]. शर्मा डा. गंगा सहाय, अथर्ववेद, संस्कृत साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण तीसरा, पृष्ठ 239 (अथर्ववेद 5/18/9)

[31]. व्यास डा. रेखा, यजुर्वेद, संस्कृत साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण तीसरा 2010, पृष्ठ 237 (यजुर्वेद 18/48)

[32]. शर्मा डा. गंगा सहाय, अथर्ववेद, संस्कृत साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण तीसरा, पृष्ठ 866-867 (अथर्ववेद 19/62/1)

[33]. व्यास डा. रेखा, यजुर्वेद, संस्कृत साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण तीसरा 2010, पृष्ठ 326 (यजुर्वेद 26/02)

[34]. चानना डा. देवराज (सम्पादक) ऋग्भाष्य-संग्रहः, मुन्शीलाल मनोहरलाल पब्लिशर्स प्रा0 लि0 नई दिल्ली, 1996, पृष्ठ 257 (ऋग्वेद10/90/12, यजुर्वेद 31/11)

[35]. द्विवेदी कपिलदेव, वैदिक साहित्य एवं संस्कृति, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पंचम संस्करण 2010 ई0 पृष्ठ 259 (ऋग्वेद 3/53/4)

[36]. शर्मा प्रद्युम्न (सं.) स्वामी विद्यानन्द 'विदेह, वेदों की सूक्तियाँ, वेद संस्थान, अजमेर, संस्करण 1977, पृष्ठ 35 (ऋग्वेद 7/104/15)

[37]. शर्मा प्रद्युम्न (सं.) स्वामी विद्यानन्द 'विदेह', वेदों की सूक्तियाँ, वेद संस्थान, अजमेर, संस्करण 1977, पृष्ठ 21(ऋग्वेद 3/26/7)

[38]. शर्मा डा. गंगा सहाय, अथर्ववेद, संस्कृत साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण तीसरा, पृष्ठ 347 (अथर्ववेद 6/139/3)

[39]. ईशादि नौ उपनिषद्, गीता-प्रेस, गोरखपुर, संवत् 2010, पृष्ठ 339 (तैत्तिरीयोपनिषद् 1/11)